साक्षात्कार

हमारे देश में करीब डेढ़ दशक से पाठ्यचर्या दस्तावेजों पर राष्ट्रीय स्तर पर सघन बहस प्रारम्भ हुई है। मुख्यतः शिक्षा के सामाजिक सरोकार इसके केन्द्र में रहे हैं। पाठ्यचर्या दस्तावेजों का ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से विश्लेषण नहीं हुआ है। इस बातचीत में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 और इससे पहले बने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेजों की निर्माण प्रक्रिया एवं सरोकारों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। साथ ही इन पाठ्यचर्या दस्तवेजों में निहित ज्ञानमीमांसीय मान्यताओं की छानबीन की गई है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा

ज्ञानमीमांसीय विवेचन

रोहित धनकर से राजेश एवं वीरेन्द्र की बातचीत

रोहित धनकर

जाने-माने शिक्षाविद् एवं दिगन्तर के मानद सचिव। आजकल अजीमप्रेमजी यूनिवर्सिटी, बैंगलोर में शिक्षा दर्शन के प्रोफेसर हैं।

राजेश

ससैक्स यूनिवर्सिटी से फोर्ड फैलोशिप के तहत शिक्षा एवं विकास में स्नातकोत्तर। करीब 9 वर्षों से स्वंयसेवी संगठनों में कार्यरत हैं। वर्तमान में अजीमप्रेमजी फाउण्डेशन में काम कर रहे हैं।

वीरेन्द्र

दिगन्तर द्वारा संचालित क्वालिटी एज्युकेशन प्रोग्राम, बारां में समन्वयक के रूप कार्य किया है। वर्तमान में अजीमप्रेमजी फाउण्डेशन, जयपुर में कार्यरत हैं।

राजेश : आप राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की संचालन समिति के सदस्य रहे हैं। आपने इस दस्तावेज निर्माण की प्रक्रिया को बहुत करीब से अनुभव किया है। सबसे पहले हम यह जानना चाहेंगे कि इसकी निर्माण प्रक्रिया क्या रही? दूसरे, इसके निर्माण के तात्कालिक सरोकार क्या रहे हैं और इसके स्रोत/संदर्भ सामग्री क्या रही है?

रोहित : इस बात को ठीक से समझने के लिए मैं इसे चार सवालों में तोड़ देता हूं। पहला, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज बनाने की प्रक्रिया क्या रही? दूसरा, इसके अनुभव क्या रहे और तीसरा, इसके तात्कालिक सरोकार क्या थे और चौथा, इसके स्रोत क्या रहे?

यदि इसके निर्माण की पूरी औपचारिक प्रक्रिया को देखें तो यह दस्तावेज हमारे पुराने दस्तावेजों से काफी अलग है। भारत में अभी तक सिर्फ तीन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज बने हैं। पहला 1988 का है, दूसरा 2000 और तीसरा 2005 का है। इससे पहले के दस्तावेजों को आप औपचारिक रूप से राष्ट्रीय दस्तावेज नहीं कह सकते क्योंकि उस वक्त शिक्षा राज्य सूची का विषय थी। उन्हें एक सलाहकार दस्तावेज के रूप में जरूर प्रस्तुत किया जाता था लेकिन वे शिक्षा नीति के तहत नहीं थे। यदि हम इन तीनों दस्तावेजों को देखें तो एक खास बात यह है कि 1988 का दस्तावेज राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) के आन्तरिक कार्यकारी समूह ने बनाया था। बाद में राष्ट्रीय स्तर पर बहुत-सी गोष्ठियां की गईं और शिक्षकों से भी बातचीत की गई, लेकिन उसे बनाने वाले और उस बातचीत को समाहित करने वाले सभी लोग

एनसीईआरटी के आंतरिक लोग ही थे। ठीक यही बात 2000 के दस्तावेज के साथ भी हुई। 2000 के दस्तावेज में कुछ प्रगति यह हुई कि क्षेत्रीय स्तर पर कुछ गोष्ठियां और सेमीनार की गईं। वे संख्या में ज्यादा थीं और ज्यादा व्यवस्थित तरीके से की गईं। लेकिन इसके बावजूद वह पूरा समूह आंतरिक ही था।

2005 का दस्तावेज निर्माण प्रक्रिया में उनसे बहुत ही भिन्न था। सबसे पहले तो इसके लिए एक राष्ट्रीय संचालन समिति का गठन किया गया जिसमें करीब 35 लोग थे। इसमें एनसीईआरटी के लोग 5-6 ही थे। बाकी लोग बाहर से थे। इससे एक बात यह भी हुई कि आप राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में राय देने के काबिल किसको मानते हैं और किसको नहीं मानते, यह दायरा काफी खुल गया। इसमें ऐसे लोग थे, जिन्होंने हो सकता है औपचारिक शिक्षा में सीधे काम नहीं किया जैसे कि साहित्यकार। यह एक संचालन समिति थी लेकिन एक इससे भी बड़ा समूह था। इस दस्तावेज के साथ यह भी महसूस किया गया कि किसी भी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज में बहुत-सी मान्यताएं, विभिन्न विषयों का ज्ञान और बहुत सारे मुद्दों पर राष्ट्रीय सहमति की झलक भी आनी चाहिए। इसलिए इसके साथ-साथ 21 पोजीशन पेपर भी बने। हर पोजीशन पेपर में एक अध्यक्ष और उसके साथ 11 से 16 सदस्यों तक के समूह भी बने। इस पूरी प्रक्रिया में संचालन समिति या फोकस समूहों के जरिए सीधे तौर पर करीब 350-400 लोग शामिल हुए और यह तादाद काफी बड़ी थी। इनकी बैठकें भी अलग-अलग जगहों पर होती थीं। पूरे देश में 21 पोजीशन पेपर और संचालन समिति की बैठकें हो रही थीं, इसलिए यह प्रक्रिया लोगों की नजर में आई। इन बैठकों की कार्यवाही को इन्टरनेट पर रख दिया गया। लोग उसे पढ़कर सलाह देते थे। इसकी एक फाइनल ड्राफ्टिंग कमेटी थी, उसमें भी एनसीईआरटी के एक-दो ही लोग थे। इसकी व्याख्या ही यही थी कि एनसीईआरटी का पूरा काम ही नेशनल कौंसिल का है। इसका मतलब है कि वह कोई विभाग नहीं है जो आंतरिक रूप से सब कुछ कर लेगा। वह तो एक कौंसिल है जो सारे राष्ट्र को उसमें शामिल करेगी। मुझे लगता है कि इस दस्तावेज की प्रक्रिया में इस भावना का काफी साफ तरीके से और घोषित रूप में पालन हुआ है।

एक सजग कोशिश यह भी हुई कि यह बातचीत सिर्फ उन लोगों तक सीमित न रहे जिन्हें हम पारंपरिक रूप से शिक्षा के लोग मानते रहे हैं। यह बातचीत उससे आगे जाए। यह शिक्षा के सिद्धान्त और लोकतंत्र में शिक्षा, दोनों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त बात थी। जॉन व्हाइट ने एक पर्चे में काफी विस्तार से इस बात के लिए आग्रह किया है और तर्क दिए हैं कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या जैसे दस्तावेजों के कुछ हिस्से, खास कर उद्देश्य और किन मूल्यों को लेकर आप शिक्षा को संचालित करना चाहते हैं, उन्हें राष्ट्र का कोई एक तबका तय नहीं कर सकता। इसमें राजनीतिज्ञ, शिक्षक और माता-पिता शामिल होने चाहिएं क्योंकि राष्ट्र की शिक्षा हर व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव डालती है। इसलिए यह सबके लिए खुला है, इसे सिर्फ विशेषज्ञों के हाथ में नहीं दे सकते। इस दस्तावेज की प्रक्रिया में यह कोशिश हुई है।

इसके अनुभव का सवाल थोड़ा व्यक्तिगत सवाल है, क्योंकि इस प्रक्रिया में शामिल सभी लोगों के अनुभव जरूरी नहीं है कि एक जैसे रहे हों। एक चीज इसमें ध्यानाकर्षित करती थी कि संचालन समिति और फोकस ग्रुप की जितनी भी बैठकें हुईं और उनमें जो चर्चाएं होती थीं, वे बहुत संजीदगी से होती थीं। मैं एक फोकस ग्रुप का अध्यक्ष था और इसके अलावा भी मैंने कई फोकस ग्रुप की बैठकों में भाग लिया था। ऐसा नहीं था, जैसा अमूमन अपने यहां होता है, कि आपने जो कहा वह भी ठीक है और मैं भी ठीक कहता हूं। किसी मुद्दे पर जो एक से अधिक पक्ष थे उन्हें विचारबद्ध किया गया, उन पर चर्चा और बहस हुई। जब आप राष्ट्रीय दस्तावेज बनाते हैं तो आखिर में सहमति तो बनानी ही होती है वरना बात आगे नहीं बढ़ती। सहमति बनाने की प्रक्रिया में जो सैद्धान्तिक मुद्दे और असहमतियां थीं वे उजागर हुईं। असहमतियों से आगे बढ़कर सहमति कैसे बनाई जाए, यह प्रक्रिया वहां बहुत साफ थी। जब दो अलग-अलग पक्ष होते हैं और उनमें सहमति बनानी हो तो उन दोनों से ऊपर उठकर एक अधिक सामान्य सिद्धान्त पर पहुंचना होता है। इस पूरी प्रक्रिया में लोगों में बहुत उत्साह नजर आया।

कुछ दूसरी बातें भी हैं। इस प्रकार की प्रक्रियाएं हमेशा ही एकदम साफ-सुथरे ढंग से नहीं चल सकतीं। एक बड़ी

समस्या जो मुझे लगी वह यह थी कि समय बहुत कम था और समय का दबाव लगातार लोगों पर रहता था। दो दिन की एक बैठक में आपके पास दस मुद्दे हैं और सारे लोग अपनी बात कहना चाहते हैं और उसकी ढंग से विवेचना भी करना चाहते हैं तो मुझे कई बार समय की जरूर थोड़ी समस्या लगती थी। लेकिन बाद में लोग इसके लिए नोट्स लेकर आते थे। इस दौरान बीच में ईमेल पर या अनौपचारिक बातचीत होती थी, इस सबके बावजूद मुझे लगता है कि ऐसा काम करने के लिए दिया गया समय बहुत कम था। मेरा अपना मानना यह है कि इतने बड़े स्तर पर यदि आप राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज की समीक्षा करना चाहते हैं तो इसके लिए डेढ़ से दो वर्ष चाहिए। इसके लिए शुरू में तो बहुत ही कम समय तय किया गया था। मुझे ठीक से याद नहीं है, आपको एनसीईआरटी के दस्तावेजों में मिल जाएगा। शायद शुरू में इसके लिए 6-7 महीने का वक्त था। हालांकि इसमें साल भर लग गया था। लेकिन इसके लिए घोषित रूप से डेढ़ वर्ष की जरूरत पड़ती है। इस प्रक्रिया में बहुत से लोगों और शिक्षकों से अन्तःक्रिया हुई जो अच्छा अनुभव रहा।

अब यदि हम इसके सरोकारों पर आएं तो मुझे लगता है कि लोग इसे भी अलग-अलग अंदाज में देखेंगे।

राजेश : आपने 1988, 2000 और 2005 के पाठ्यचर्या दस्तावेजों की प्रक्रिया के फर्क पर बात की है। क्या इनके सिद्धान्तों और सरोकारों में भी कोई फर्क है? 2005 का दस्तावेज पहले वालों से किस तरह से भिन्न है?

रोहित : देखिए, सिद्धान्तों और सरोकारों का जो फर्क है वह प्रक्रिया और अनुभव से नहीं आ सकता, वह उन दस्तावेजों के अध्ययन से आएगा। यदि इस सवाल को जोड़ना है तो हम इस सवाल पर बात कर सकते हैं और तीनों में जो समानताएं और भेद हैं, उनकी बात कर सकते हैं। यह उपयोगी भी है, लेकिन पहले हम सीधे-सीधे उस वक्त के सरोकारों की बात करें और इसके बाद इन सवालों को जोड़ लेंगे।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 बनाने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एम.एच.आर.डी.) की ओर से एनसीईआरटी को एक पत्र लिखा गया था। वह पत्र इस दस्तावेज के अंत में दिया गया है। उसमें यह कहा गया था कि 1993 में यशपाल समिति की जो रिपोर्ट 'शिक्षा बिना बोझ के' छपी थी उसमें कुछ चीजों की तरफ ध्यान आकर्षित किया गया था। उसमें पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यक्रम और कक्षा में किस तरह से पढ़ाया जाए, इस पर कुछ सुझाव दिए गए थे। उन पर मोटी-मोटी स्वीकृति के बावजूद भी हमारे दस्तावेजों में वे चीजें नहीं हुई थीं। बच्चे को कितना पढ़ाएं, उस पर बोझ कितना हो, समझ में कितनी गहराई तक जाएं, कक्षा में पढ़ाने का तरीका क्या हो, पाठ्यपुस्तकें कैसी हों; इन्हें आप बहुत ही मजबूत शिक्षणशास्त्रीय सरोकार कह सकते हैं। दूसरे आप पाएंगे कि उस पत्र में हमारे संविधान की भूमिका का बड़ा हिस्सा उद्धृत है और वह बहुत स्पष्ट रूप से दूसरे सरोकार को रेखांकित करता है कि शिक्षा को लोकतंत्र में सामाजिक न्याय और बराबरी के मसलों से अभी तक हम जितना कर पाए हैं, उससे और अधिक गहराई से जोड़ने की जरूरत है। शिक्षा के बारे में हम जिस नजरिए से सोचते हैं, उस नजरिए और शिक्षा में हम जिस तरह काम करते हैं और बच्चे जितना सीख पाते हैं, उसमें समानता एवं सामाजिक न्याय लाने की बात करता है। यह दूसरा सरोकार उसमें काफी महत्त्वपूर्ण था। मुझे ऐसा भी लगता है कि पोजीशन पेपर के लिए बने अलग-अलग समूह और संचालन समिति इन दोनों सरोकारों को लेकर बहुत जागरूक थी और इस दस्तावेज के निर्माण की पूरी प्रक्रिया में इन सरोकारों पर बहुत बातचीत हुई।

जहां तक स्रोत और संदर्भ का सवाल है तो जब भी आप कोई राष्ट्रीय दस्तावेज बनाते हैं तो एक तो उसका स्रोत और संदर्भ उस देश की शिक्षा नीति होती है। इसीलिए स्वतंत्रता के बाद के सभी आयोगों की रिपोर्ट का इस्तेमाल स्रोत के रूप में किया गया। यशपाल समिति की रिपोर्ट भी उसका हिस्सा थी। दूसरे, पाठ्यचर्या किसी निर्वात (वेक्युम) में तो बनते नहीं हैं, उससे पहले के भी दस्तावेज होते हैं। इससे पहले जितने भी दस्तावेज राष्ट्रीय स्तर पर बनाए गए थे वे सभी संदर्भ सामग्री का हिस्सा थे। पहला दस्तावेज 1975 में बना था और एनसीईआरटी ने पूरे राष्ट्र के लिए कोशिश की थी। तीसरे, इस देश में शिक्षा को लेकर जितने अध्ययन हुए हैं- शिक्षा की प्रक्रिया

को लेकर, सीखने को लेकर, कौनसे बच्चे स्कूल आ रहे हैं और कौनसे नहीं आ रहे हैं, सीखने में लड़के-लड़कियों में या जातियों के आधार पर कितना भेद है आदि- उनका भी स्रोत की तरह उपयोग किया गया। विभिन्न अनुशासनों से जो लोग थे जैसे कि साहित्यकार, विश्वविद्यालयों के शिक्षाविद्, पत्रकार इत्यादि; उनके विषयों से संबंधित साहित्य का भी स्रोत के रूप में उपयोग किया गया। दुनिया भर में अलग-अलग विषयों में जो भी शोध हो रहे हैं, उनका उपयोग किया गया। उदाहरण के लिए, गणित की शिक्षा और शिक्षणशास्त्र पर जो पोजीशन पेपर था, उसमें लोगों ने गणित पढ़ाने पर हो रहे शोधों का उपयोग किया। शैक्षिक सिद्धान्तों को लेकर जो भी साहित्य है, वह भी इस संदर्भ का हिस्सा था। लेकिन भारतीय संदर्भ में हमारी नीतियों को इस दस्तावेज के केन्द्र में रखा गया था।

इन तीनों के सरोकारों में किस प्रकार का भेद है, इस बारे में बाकी दस्तावेजों की प्रक्रियाओं के बारे में तो मैं नहीं कह सकता लेकिन यदि इन तीनों दस्तावेजों को साथ रखकर पढ़ें तो मेरी कुछ मान्यताएं हैं। अब यह थोड़ा अकादमिक सवाल हो गया है और किसी भी अकादमिक सवाल का कोई एक जवाब नहीं होता, एक से अधिक जवाब होते हैं। यदि आप किसी दूसरे व्यक्ति से बात करेंगे तो शायद वह इसका दूसरे ढंग से जवाब दे।

मेरा यह ख्याल है कि 1988 के दस्तावेज में शिक्षा को राष्ट्र निर्माण के लिए और व्यक्ति को राष्ट्रीय संसाधन के रूप में देखा गया, यह बहुत ही रेखांकित होकर सामने आया। इस पर बहुत जोर दिया गया है। उसमें दूसरी बात यह उभरकर आती है कि राष्ट्र निर्माण के लिए, आर्थिक उन्नति और सामाजिक बदलाव की जितनी भी प्रक्रियाएं हैं, उसमें शिक्षा योगदान देती है। उसमें एक से अधिक जगह यह वाक्य है कि शिक्षा सामाजिक बदलाव का एक सशक्त माध्यम है और शिक्षा राष्ट्रीय प्रगति का सशक्त माध्यम है। शिक्षा के उद्देश्यों और शिक्षा को राष्ट्रीय उद्देश्यों या लक्ष्यों के बारे में मुझे यह लगता है कि कोठारी कमीशन की रिपोर्ट की छाया उस पर बहुत गहरी है। वैज्ञानिक नजरिए और धर्मनिरपेक्षता पर दस्तावेज में काफी जोर है।

जब 2000 में आते हैं तो शिक्षा को राष्ट्रीय उद्देश्यों को पूरा करने और राष्ट्रीय अस्मिता बनाने के ठीक उसी नजरिए से देखा जाता है। हमारी सांस्कृतिक विरासत से बच्चे को परिचित करवाना, उसका संरक्षण और उसका संवर्धन करना आदि सारी चीजें उसमें हैं। लेकिन 1988 के दस्तावेज में जब हम राष्ट्रीय धरोहर, विरासत और उसके संरक्षण की बात करते हैं तो यह महसूस नहीं होता कि उस पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है या दुनिया में हो रहे वैचारिक विकास को छोड़कर उसकी ज्यादा बात कर रहे हैं। जब 2000 के दस्तावेज को देखते हैं तो बाकी चीजों को समान रखते हुए राष्ट्रीय अस्मिता और सांस्कृतिक संरक्षण वगैरह पर अत्यधिक बल दिया गया है। कई जगह ऐसा भी लगता है कि 2000 के दस्तावेज में इस बात को जिस ढंग से लिया गया है वह बार-बार विवेकशील चिन्तन और धर्मनिरपेक्षता के साथ टकराती है। हालांकि उन्होंने इसे अगले वाक्यों में स्पष्ट करने की कोशिश की है लेकिन भावना स्पष्ट हो जाती है।

हमारे यहां वैज्ञानिक नजरिया कहने का रिवाज है, हम विवेकशील चिन्तन का विकास नहीं कहते। वैज्ञानिक नजरिया विवेकशील चिन्तन का एक छोटा-सा हिस्सा है। लेकिन मुझे लगता है कि इसके प्रचारित होने के दो कारण थे। एक तो नेहरू जी यह शब्द काम में लेते थे और उस जमाने में यह अच्छा ही रहा होगा। दूसरे, मुझे नहीं पता कि कितने लोगों को यह मालूम है कि हम जिन्हें नागरिक के मौलिक कर्तव्य कहते हैं उनमें से एक वैज्ञानिक नजरिए का विकास है। एक शिक्षक के नाते मुझे हमेशा यह लगता रहा है कि यह थोड़ी-सी लंगड़ी अवधारणा है।

2005 का दस्तावेज भी राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति या राष्ट्रीय उद्देश्यों का विरोध या उससे अलग हटने की बात नहीं करता, लेकिन यह बात को मुदालियार कमीशन के जमाने से उठाता है और शिक्षा को लोकतंत्र के साथ जोड़ता है। लोकतंत्र की एक मूल शर्त यह है कि हर इंसान अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण है। यह बहुत अच्छी बात है कि वह राष्ट्र के लिए और सामाजिक प्रक्रियाओं में योगदान करे, लेकिन यदि वह नहीं भी करता है तो भी इंसान

के रूप में उसकी कीमत फिर भी है। यह बात इस दस्तावेज में ज्यादा रेखांकित होकर आती है। यदि कोई ध्यान दे तो इन दोनों पक्षों में थोड़ा फर्क है। एक में राष्ट्र है और नागरिक को राष्ट्र के अनुसार ढालना है। दूसरे में नागरिक एक सचेत और विवेकशील प्राणी है तथा स्वतंत्र है इसलिए वह एक देश की तस्वीर कैसी हो, इस पर भी राय दे सकता है। इसमें इस बात पर बल है कि एक नागरिक के लिए यह स्वतंत्रता है कि राष्ट्र कैसा बनाए। इन सरोकारों में यह फर्क है। दूसरा सरोकार वहीं से आ रहा है जैसा मैंने आपसे शुरू में कहा था कि लोकतंत्र इसका एक बड़ा सरोकार है। मुझे ऐसा लगता है कि लोकतंत्र की परिभाषा इन तीनों दस्तावेजों में विकसित होती हुई दिखाई देती है और इस दस्तावेज में वह अधिक पूर्ण है। मैं ऐसा नहीं कह रहा हूं कि वह संपूर्ण है, लेकिन तुलनात्मक रूप से पूर्ण है।

दूसरे, शिक्षणशास्त्रीय दृष्टि से बड़ा परिवर्तन इन दस्तावेजों में है। पहले के दोनों दस्तावेज रचनात्मकतावाद की बात करते हैं। दोनों में यह शब्द है और दोनों में बार-बार कहा जाता है कि बच्चा अपना ज्ञान स्वयं निर्माण करता है। लेकिन यहां रचनात्मकतावाद की थोड़ी ज्यादा विस्तार से व्याख्या करके और कक्षा-कक्ष में वैसा किया कैसे जा सकता है, इसके कुछ उदाहरण और इसके लिए कोशिश करने के तरीकों पर ज्यादा विस्तार से लिखा गया है। और भी फर्क हैं लेकिन मोटे तौर यह दो महत्त्वपूर्ण फर्क हैं।

राजेश : पाठ्यचर्या पर शिक्षाविदों में बहस होती रहती है और पिछले 10-15 सालों में बहुत ही सघन बहस रही है। लेकिन यह भी देखने में आता है कि एक तरफ तो शिक्षाविदों में यह बहस एक परिपक्वता प्राप्त कर रही है लेकिन शिक्षकों तक यह पहुंच ही नहीं रही है, ऐसा आभास होता है। हम यह जानना चाहते हैं कि पाठ्यचर्या के मायने क्या हैं और किसी भी राष्ट्र के लिए और भारत जैसे देश के लिए इसके मायने को कैसे देखें-समझें?

रोहित : हमारे सारे पाठ्यचर्या दस्तावेजों को यदि आप पढ़ेंगे तो उनमें यह बहुत स्पष्ट हो जाएगा कि अंग्रेजी के करिक्युलम शब्द को हिन्दी के पाठ्यचर्या शब्द के समकक्ष या उसके अनुवाद के रूप में काम में लिया जाता है। जहां तक मेरे देखने में आया है, इसके लिए हिन्दी में दो शब्द काम में लिए जाते हैं, एक शब्द है पाठ्यचर्या और दूसरा है शिक्षाक्रम। एनसीईआरटी जो किताबें छापती है और कुछ राज्य करिक्युलम का अर्थ पाठ्यचर्या के रूप में करते हैं। राजस्थान में जब यही बात की जाती है तो उसे शिक्षाक्रम कहते हैं। राजस्थान का शब्द शिक्षाक्रम और एनसीईआरटी का पाठ्यचर्या, दोनों करिक्युलम शब्द के अनुवाद हैं।

अब दिक्कत यह है कि पाठ्यचर्या की अवधारणा पर सारी दुनिया में कोई एकमत नहीं है। यदि हम करिक्युलम की जगह पाठ्यचर्या शब्द को ही काम में लें तो अलग-अलग लोग उसको अलग-अलग ढंग से काम लेते हैं। जब शिक्षाविद और खासकर शिक्षा दर्शन के लोग बात करते हैं तो वे कहते हैं कि आप चाहे सीधे-सीधे शिक्षा के उद्देश्यों को विचारबद्ध करें या न करें लेकिन शिक्षा के उद्देश्य होते हैं। वे कई बार विचारबद्ध हो सकते हैं तो कई बार निहित हो सकते हैं। शिक्षाक्रम या पाठ्यचर्या वह योजना है जिसके तहत कक्षाओं और स्कूलों में पढ़ाकर उन उद्देश्यों की प्राप्ति करते हैं। यह छोटी-सी और साफ-सुथरी परिभाषा है। मोटे तौर पर आप कह सकते हैं कि शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने की योजना है पाठ्यचर्या।

लेकिन जब इसका विश्लेषण शुरू हो जाता है, खासकर सामाजिक विज्ञान के लोग जब इसका विश्लेषण करते हैं, तो इसमें से कई और चीजें निकल आती हैं। मसलन, किसी राष्ट्र ने हो सकता है कि एक तरह की पाठ्यचर्या बना रखी हो और उसके कुछ उद्देश्य भी हों लेकिन जब स्कूल में वह पाठ्यचर्या लागू होती है तो उन उद्देश्यों के अलावा भी कुछ चीजें हो जाती हैं। मान लीजिए, स्कूल में तो पाठ्यचर्या का उद्देश्य यह है कि सभी बच्चे हिन्दी, गणित, विज्ञान या जो भी भाषाएं पढ़ाते हैं उन्हें अच्छी तरह पढ़ें। इन्हें पढ़ाने के लिए एक लम्बा और कई वर्ष चलने वाला कार्यक्रम चलता है जिसमें एक शिक्षक बोर्ड पर खड़ा होकर पढ़ाता है और बच्चे अनुशासित ढंग से सामने बैठे होते हैं। कक्षा की यह व्यवस्था कुछ और चीजें उसके नतीजे के रूप में हो रही हैं, जिनके बारे में आपने

अपनी पाठ्यचर्या में कहीं नहीं लिखा है। उदाहरण के लिए, बच्चों ने उसके साथ-साथ सत्ता का आज्ञापालन भी सीख लिया जो हो सकता है उद्देश्यों में लिखा हुआ ही नहीं हो। यह उस पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन के नतीजे हो गए। इस प्रकार की चीजों को समाहित करने के लिए लोग छद्म पाठ्यचर्या (हिडन करिक्युलम) या इन्टेण्डेड करिक्युलम एण्ड इम्पलीमेंटेड करिक्युलम वगैरह शब्दावली काम में ले लेते हैं।

मेरा अपना मानना है कि यह सारे शब्द व्युत्पन्न (डेरिवेटिव) हैं और इन्हें एक सामाजिक परिस्थिति के अध्ययन के लिए बनाया जाता है जो बहुत उपयोगी हैं, लेकिन वे पाठ्यचर्या की मूल अवधारणा, शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की योजना पर कोई असर नहीं डालते। यह उसके विरोध में नहीं खड़े होते। वास्तव में यहां पाठ्यचर्या का यही आशय लिया गया है। दूसरी बात यह है कि भारत जैसे बड़े देश में जहां बहुत विविधता है और हमारे लोकतंत्र का एक संघीय ढांचा है वहां शिक्षा के क्रियान्वयन और शिक्षा किस तरह से चलेगी इसका सारा जिम्मा राज्यों के हाथ में होता है। भारत एक राष्ट्र भी है इसलिए सारे राष्ट्र में एक समग्र स्वरूप होना भी जरूरी है। जब लोग पाठ्यचर्या बनाते हैं तो इन सभी चीजों का ख्याल रखना पड़ता है। कुछ और देशों में ऐसा नहीं होता। जैसे, यदि इंग्लैण्ड में कोई पाठ्यचर्या बनती तो वह पूरे देश में एक कानूनी दस्तावेज के तौर पर लागू हो जाती है और उसे सभी स्कूलों को मानना होता है। हमारे यहां ऐसा नहीं हो सकता। यदि आप पाठ्यचर्या के तीनों दस्तावेजों को देखें तो यह एकदम महसूस होगा कि पहले दोनों दस्तावेजों में, खासकर 1988 के दस्तावेज में, एक बड़ी चिन्ता यही है कि राष्ट्र में शिक्षा के उद्देश्य और शिक्षणशास्त्र के स्वरूप को तो छोड़िए, शिक्षा का ढांचा ही एक जैसा नहीं है। हम अभी जिसे 10+2 कह रहे हैं इसे स्थापित करने में लगभग 20-25 वर्ष लगे हैं। कोठारी कमीशन के तुरंत बाद ये प्रक्रियाएं शुरू हुई थीं और 90 के आसपास आते-आते यह ढांचा पूरे राष्ट्र में एक जैसा हुआ है। अतः उन दस्तावेजों की बड़ी चिन्ता राष्ट्रीय स्वरूप और इसका एक हिस्सा एक जैसा ढांचा बनाना रहा है।

दूसरे, इन दस्तावेजों में घोषित रूप से एक जैसी 'पढ़ाई की योजना' (स्कीम ऑफ स्टडीज) बनाना लिखा हुआ है। पढ़ाई की योजना का मतलब है कि प्राथमिक शिक्षा में आप वहां की क्षेत्रीय भाषा पढ़ाते हैं, गणित पढ़ाते हैं और पर्यावरण अध्ययन पढ़ाते हैं। इसमें इसके अलावा भी कुछ चीजें शामिल हैं जिनके बारे में लोगों को पता ही नहीं है जैसे कला शिक्षण और स्वास्थ्य से संबंधित शिक्षा। यह पढ़ाई की योजना है। कल्पना यह है कि इसके अंदर पूरे राष्ट्र में अलग-अलग प्रान्तों में क्या पढ़ाया जाएगा, उसमें कुछ भेद कर सकते हैं। लेकिन यह पढ़ाई की योजना वैसी होनी चाहिए और बच्चों की क्षमताओं में संपूर्ण राष्ट्र में समकक्षता होनी चाहिए। तीसरी चिन्ता इन तीनों दस्तावेजों में, पहले दोनों में ज्यादा है और तीसरे में थोड़ी कम है, वह है राष्ट्रीय एकता। हमारा प्रसिद्ध नारा विविधता में एकता है। पाठ्यचर्या को इसे संबोधित करना होता है। इसलिए तीनों पाठ्यचर्याओं में कॉमन कोर की बात की गई है। दस ऐसी चीजें लिखी हैं जो सभी पाठ्यचर्याओं में होनी चाहिएं। इन्हें मिलाकर देखेंगे तो यह कॉमन कोर वाली बातें हैं। यह हमारी 1986 की शिक्षा नीति से आती हैं। पहले भी इसका जिक्र हुआ है लेकिन वहां यह परिभाषित नहीं है।

अब यदि आप पूरे राष्ट्र के लिए पाठ्यचर्या की बात करेंगे तो आपको तीन-चार चीजों पर एक साथ ध्यान देना होगा। पहली, शिक्षा का ढांचा, वर्षों और कक्षाओं के रूप में एक जैसा हो। दूसरी, पढ़ाई की योजना और क्षमताएं एक जैसी हों और तीसरी, कॉमन कोर वाला हिस्सा सबमें रहे। इसके बाद अलग-अलग प्रान्तों में सबके लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्यचर्या दस्तावेज बनाने की छूट है। यदि इस दृष्टि से देखें तो यह पूरी की पूरी तयशुदा (वर्क्ड्आउट) पाठ्यचर्या भी नहीं है। हम नीतिगत दृष्टि से पूरे राष्ट्र में एक जैसा पाठ्यक्रम या पाठ्यचर्या बनाकर नहीं लगा सकते। यह हमारे संविधान की भावना और राष्ट्र की परिस्थिति के भी विरुद्ध है। ऐसी स्थिति में हम क्या कर सकते हैं? रूपरेखा एक अच्छा शब्द है लेकिन मुझे लगता है कि फ्रेमवर्क इसकी भावना को अच्छी तरह अभिव्यक्त करता है। फ्रेमवर्क का मतलब है कि कुछ मूल सिद्धान्त हैं, आपने उन सिद्धान्तों को एक साथ रख

दिया है। वे किस तरह क्रियान्वित हो सकते हैं और उनके निहितार्थ क्या हैं, उन्हें कुछ हद तक स्पष्ट कर दिया। बाद में आपने लोगों से कहा कि इन सब सिद्धान्तों को मानते हुए, बिना इनको तोड़े अपने-अपने तरह की पाठ्यचर्या बना लीजिए। इसलिए यह पाठ्यचर्या की रूपरेखा या नेशनल करिक्युलम फ्रेमवर्क है। तयशुदा पाठ्यचर्या नहीं है। पूरी दुनिया में यह माना जाता है और भारत में तीनों दस्तावेज यह कहते हैं कि पाठ्यचर्या एक ऐसा राष्ट्रीय दस्तावेज होता है जिसमें मूल सिद्धान्त लिखे होते हैं और आगे हर प्रान्त अपने-अपने पाठ्यचर्या दस्तावेज बना सकता है।

2005 का दस्तावेज तो यह कहता है कि हर स्कूल और हर जिला भी अपने-अपने पाठ्यचर्या दस्तावेज बना सकता है। इसमें स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि यह कोई बाध्यकारी और पहले से निर्धारित दस्तावेज नहीं है, यह समर्थ बनाने वाला एक दस्तावेज है। समर्थ बनाने का मतलब है कि आपने मोटे-मोटे सिद्धान्त बता दिए और उन्हें कैसे लागू करें इसकी सामग्री उपलब्ध करवा दी। इसीलिए पोजीशन पेपर का विचार रखा गया। अब यदि इस सारे सेट, मूल दस्तावेजों को देखें - राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा और 21 पोजीशन पेपर - यह ऐसी संदर्भ सामग्री उपलब्ध करवाते हैं कि कोई जागरूक शिक्षक यदि किसी स्कूल में बैठे हों तो इस संदर्भ सामग्री के आधार पर बड़े आराम से अपने स्कूल के लिए बहुत अच्छी पाठ्यचर्या बना सकते हैं। हर पोजीशन पेपर में और संदर्भ दिए हुए हैं, तो एक तरह से संदर्भ निर्माण का काम हुआ है। यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो यह पाठ्यचर्या की रूपरेखा ही है।

राजेश : शिक्षक जो शब्द इस्तेमाल करते हैं वह तो पाठ्यक्रम है। पाठ्यचर्या शब्द का शिक्षकों के द्वारा इस्तेमाल नहीं किया जाता। हम पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम की अवधारणाओं के अन्तर को समझना चाहते हैं।

रोहित : इसे भी आप दो-तीन अंदाज में देख सकते हैं। हमारे यहां शिक्षा पर ऐतिहासिक दृष्टि से कैसे सोचा गया है, उस दृष्टि से देख सकते हैं और यदि शिक्षक पाठ्यक्रम का जिक्र करने लगे हैं तो यह भी विकास ही है। क्योंकि वास्तव में तो पाठ्यपुस्तक में ही सब कुछ समाहित होने की बात होती है।

राजेश : शिक्षकों को तो पाठ्यक्रम खत्म करना होता है।

रोहित : हां, लेकिन वहां पाठ्यक्रम का मतलब भी किताब के सारे पाठ पढ़ा देना होता है और उनका क्रम भी किताब की जिल्द में बंधा होता है, उस क्रम को पूरा कर देना भर होता है। मुझे नहीं पता कि 10 साल पहले तक कितने शिक्षक किसी पाठ्यपुस्तक के अलावा पाठ्यक्रम के रूप में किसी दूसरे दस्तावेज की कल्पना करते होंगे। अंग्रेजी में एक और शब्द है सिलेबस। पाठ्यक्रम की जब हिन्दी में बात करते हैं तो अमूमन सिलेबस की बात करते हैं। पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या में जो मूल फर्क है वह यह है कि पाठ्यचर्या शिक्षा के उद्देश्य, किस प्रकार के विषय पढ़ाए जाएं, सामग्री चुनाव करने के क्या सिद्धान्त काम में लें, शिक्षण विधि के कौनसे सिद्धान्त काम में लें, मूल्यांकन के लिए कौनसे सिद्धान्त काम में लें और किस प्रकार की सामग्री काम में लें; इसके ऊपर कुछ दिशा-निर्देश लिखे होते हैं। इन्हें आगे कैसे विस्तारित करेंगे, इसके कुछ उदाहरण हो सकते हैं। इस दस्तावेज को पाठ्यचर्या कहते हैं। इसके आधार पर जब ज्यादा विस्तृत दस्तावेज बनाएंगे वह पाठ्यक्रम होगा। मान लीजिए, आपने एक विषय लिया गणित। अब आप यह तय करते हैं कि गणित की पढ़ाई पांच साल के बच्चे के लिए कहां से शुरू हो, पहले क्या पढ़ाएं और उसके बाद क्या पढाएं, फिर आगे क्या पढ़ाएं। पहली कक्षा में गिनती कहां तक सिखाएं और दूसरी में कहां तक पढ़ाएं; यह जो विस्तार और क्रम तथा सामग्री का काम है; इसे पाठ्यक्रम कहते हैं। यह मानकर चला गया है कि इसका विस्तार करने का काम राज्यों या स्कूलों का है।

भारत में जो स्थिति है, वास्तव में, उसमें तीन शब्द काम में लेते हैं। पाठ्यचर्या की रूपरेखा जो सारे राष्ट्र के लिए मूल सिद्धान्तों का एक दस्तावेज है और जिसमें राजनैतिक और सामाजिक सरोकार, शिक्षा के उद्देश्य, लोकतंत्र का शिक्षा से रिश्ता आदि मोटी-मोटी बातें होती हैं। फिर हर राज्य को एक पाठ्यचर्या बनानी होती है कि इस

पाठ्यचर्या की रूपरेखा के आधार पर अब राजस्थान की क्या पाठ्यचर्या होनी चाहिए क्योंकि उनकी कुछ खास परिस्थितियां हो सकती हैं। अर्थात् पहले पाठ्यचर्या की रूपरेखा, फिर पाठ्यचर्या दस्तावेज और इसके बाद पाठ्यचर्या दस्तावेज के आधार पर पाठ्यक्रम बनाते हैं। फिर पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के आधार पर पाठ्यपुस्तक बनाते हैं और शिक्षक प्रशिक्षण करते हैं। तब जाकर कक्षा में विधिवत काम शुरू हो सकता है।

यह अलग बात है कि हम इस प्रक्रिया को कितनी छोटी कर देते हैं। आजकल कर क्या कर रहे हैं, यह भी भिन्न बात है। इस दृष्टि से देखें तो ये तीनों अवधारणाएं बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और इन पर अच्छी चर्चा होनी चाहिए, शिक्षकों को पता भी होना चाहिए और अपनी योजना में इसे काम में भी लेना चाहिए।

राजेश : एक प्राथमिक स्तर के शिक्षक के लिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण दस्तावेज पाठ्यचर्या है न कि पाठ्यचर्या की रूपरेखा। एक शिक्षक की ज्यादा रुचि उसके राज्य द्वारा बनाई पाठ्यचर्या में होगी।

रोहित : इस सवाल का जवाब इस बात पर निर्भर करता है कि एक तो आप शिक्षा से क्या समझते हैं और दूसरे, आप शिक्षक से क्या समझते हैं। यदि शिक्षा से हम सिर्फ इतना ही आशय लेते हैं कि पढ़ना-लिखना सिखा दें या आजकल जिसे ट्वेन्टी फर्स्ट सेन्चुरी स्किल्स (इक्कीसवीं सदी के कौशल) कहते हैं, वह सिखा दें और वह कुछ काम धंधा करने लगे।

शिक्षक से हम एक ऐसे इंसान की कल्पना करते हैं जिसको एक किताब दे दी और यह बता दिया कि कक्षा में जाइए और पढ़ा दीजिए, और आपका काम सोचने का नहीं है; तो आप एकदम ठीक कह रहे हैं। लेकिन यदि आप शिक्षा को थोड़ा व्यापक नजरिए से देखते हैं जिसमें आप एक सक्रिय लोकतंत्र में विवेकशील नागरिक की बात कर रहे हैं या अपनी जिन्दगी में खुद राह ढूंढ़ने वाले इंसान की बात कर रहे हैं तो फिर आप बच्चे की ऐसी चीजों में मदद करेंगे कि वह खुद सोच सके और उसका आलोचनात्मक नजरिया बन सके। यदि इस दृष्टि से शिक्षा को देखेंगे तो फिर ऐसा व्यक्ति शिक्षा नहीं कर सकता जो उसके मूल सिद्धान्तों को या इंसानी सरोकारों या सामाजिक और लोकतंत्र से शिक्षा के जो सरोकार हैं, उन्हें नहीं समझता हो। इसलिए पाठ्यचर्या और इन सरोकारों का समझना शिक्षक के लिए बहुत लाजमी हो जाता है। यह इस बात पर बहुत निर्भर करेगा कि मैं जो गणित पढ़ाता हूं उसको सिर्फ जोड़-बाकी करने या सब्जी के भाव तक सीमित रखता हूं या उसको विवेकशील चिन्तन के जरिए के रूप में भी देखता हूं। यदि विवेकशील चिन्तन के जरिए के रूप में देखता हूं तो फिर मुझे गणित के शिक्षण से संबंधित या गणित की प्रकृति के ज्ञान से संबंधित सारी चीजों को जानना होगा। यह सभी चीजें पाठ्यक्रम में नहीं आ पाती हैं। पाठ्यचर्या की रूपरेखा और पाठ्यचर्या सारी चीज को पूरे राष्ट्र के चिन्तन से जोड़ती है, इसलिए वहां तक आना जरूरी होगा। मुझे व्यक्तिगत रूप से ऐसा लगता है कि शिक्षक प्रशिक्षणों में तीनों दस्तावेजों पर काफी काम करना चाहिए बल्कि बेहतर होगा यदि शिक्षक अपने राज्य की पाठ्यचर्या और पड़ोसी दो राज्यों की पाठ्यचर्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करें।

राजेश : 2005 के दस्तावेज में एक बात काफी जोर देकर कही गई है कि बच्चा अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करता है। पहला सवाल तो यह कि इसके मायने क्या हैं और दूसरा सवाल है कि यदि बच्चा अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करता है तो ऐसे में फिर शिक्षक की क्या भूमिका होगी?

रोहित : वास्तव में आप एक सवाल नहीं पूछ रहे हैं बल्कि यह सवालों का एक गुच्छा है। मुझे लगता है कि यह तीन-चार दिन बात करने के लिए पर्याप्त है लेकिन अभी जितनी बात कर सकते हैं, वह करने की कोशिश करते हैं। यह जुमला आजकल बहुत प्रसिद्ध है कि बच्चा अपने ज्ञान का निर्माण खुद करता है और अलग-अलग लोग इसके दर्जनों अर्थ गढ़ते हैं। मैं इसे कैसे समझता हूं और कुछ हद तक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 कैसे समझती है, इसकी मोटी-मोटी बात कर सकते हैं। इसके अलावा भी इसकी और व्याख्याएं हैं।

यदि हम इस तरह से देखना चाहते हैं तो सबसे पहले हमें यह देखना होगा कि हम ज्ञान को किस नजरिए से देखते हैं। बच्चा जिस चीज को बना रहा है, अपने ज्ञान का खुद निर्माण करता है तो यह ज्ञान होता क्या है? यह मजेदार बात है कि हमारे देश में ज्ञान की बात बड़ी डर-डर के की जाती है।

पहली समस्या तो यह है कि हमने ज्ञान शब्द को बहुत महिमामंडित और महान बना दिया है। ऐसा लगता है कि कुछ ही लोग ज्ञानी होते हैं जैसे शंकराचार्य, सर्वपल्ली राधाकृष्णनन, गांधी जी या टैगोर। मैं, छोटा-मोटा आदमी या शिक्षक तो उन्होंने जो ज्ञान का समुद्र रचा है उसमें से एकाध बूंद उठा लें तो ही बहुत है। लेकिन यदि भारत में भी दर्शन में जाएंगे तो वहां ज्ञान को इस तरह नहीं देखा जाता, अलग ढंग से देखा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति दुनिया की समझ बनाने के लिए अपने मन में अवधारणाओं के जो ढांचे बनाता है, वह सब का सब ज्ञान है। फिर वह शंकराचार्य भी बनाता है और गांव में काम करने वाला मजदूर भी बनाता है। दोनों के पास उस अर्थ में अपना ज्ञान है। यह ज्ञान का एक अर्थ हुआ।

ज्ञान की दूसरी शर्त यह होती है कि जो ढांचे हमने बनाए हैं, मैंने अपने लिए बनाए हैं। मैंने अपने मन में दुनिया के बारे में कुछ सोच लिया, कुछ विचार बना लिए और उन्हें आपस में जोड़ भी लिया। उदाहरण के लिए, हम बात कर सकते हैं कि गेहूं की खेती करने के लिए क्या-क्या शर्तें चाहिएं। मैंने गेहूं की, खेत की, खेती की अवधारणा बना ली और यह भी कि सर्दी में गेहूं ज्यादा पैदा होता है, उसमें पानी और खाद चाहिए। यह सब मैंने बना लिए हैं और यह मेरा ज्ञान है। अब इसके साथ दो दिक्कतें हैं, इनसे पार पाएंगे तब इसे ठीक से ज्ञान कह पाएंगे।

पहली दिक्कत तो यह है कि मैंने मेरे मन में जो कुछ भी सोच लिया, अवधारणाएं बना लीं, उनके आपसी संबंध बना लिए, लेकिन मैं जो करके देखता हूं, वैसा प्रकृति में होता ही नहीं है। इसलिए पहले तो मेरे ज्ञान को प्रकृति की जांच को पास करना होगा। यदि मैं समझता हूं कि गेहूं नवम्बर में बोने से बेहतर होता है, तो सचमुच में वैसा होना चाहिए। यदि किसी ने जून में गेहूं बो दिया, तो उसके मेरे से कम गेहूं होने चाहिएं। अतः पहली बात तो यह है कि उसका प्रकृति के साथ तालमेल होना पड़ेगा। मैं उसे प्रकृति के साथ एकदम आबद्ध नहीं कर रहा हूं लेकिन कुछ तालमेल होना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि गेहूं के बारे में हम सबने अपना अलग-अलग ज्ञान बना रखा है। यदि हमें उस ज्ञान के बारे में बातचीत करनी है या आगे बढ़ाने के लिए सामूहिक प्रयत्न करने हैं, तो हम सबको एक-दूसरे की बात समझ में आनी चाहिए। साथ ही किसी बात को जिस आधार पर सही या गलत मानते हैं, वे आधार हम सबके सामान्य होने चाहिएं। फिर यह दूसरी बात है कि जो लोग ज्ञान के उस क्षेत्र में जुटे हुए हैं, उनका वह ज्ञान धीरे-धीरे सामूहिक होना पड़ेगा।

इस विषय पर समय की कमी की वजह से अभी विस्तार से बात नहीं कर सकते लेकिन ज्ञान को कम से कम दो शर्तें तो पूरी करनी ही होंगी। यदि ज्ञान दुनिया के अनुभवों के बारे में है तो उसे हमारे अनुभवों से मेल खाना चाहिए। ज्ञान को या तो अनुभवों की व्याख्या करनी चाहिए या अनुभवों की भविष्यवाणी या वर्णन करना चाहिए। यदि वह गलत करता है तो वह ज्ञान नहीं है। दूसरी बात यह है कि ज्ञान के उस क्षेत्र में जो दूसरे लोग हैं उनसे मेरी बातचीत होनी चाहिए। यदि वे मुझसे पूछें कि तुम इसे सच क्यों मानते हो, तो पहले तो मैं इसका मतलब बता सकूं और फिर कारण बता सकूं। यदि आप कोई भी अवधारणा लें जैसे कि खाद। यदि आप मुझसे पूछें कि यह खाद क्या होता है तो मुझे पता हो कि यह क्या होता है। फिर यदि मैं यह दावा करता हूं कि खाद डालने से गेहूं ज्यादा होता है तो आप मुझसे यह पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों कह रहे हो, तुम्हारे पास क्या प्रमाण हैं। तो फिर ज्ञान को प्रमाण चाहिए। जब यह दो चीजें होंगी तब वह ज्ञान बनेगा।

जब हम अगली बात कहते हैं कि बच्चा अपना ज्ञान खुद बनाता है तो इसमें एक तो मनोवैज्ञानिक सच्चाई

है और इसमें ज्ञानशास्त्रीय समस्या है। यदि हम इस बात को आगे बढ़ाना चाहते हैं तो इन दोनों में संगति बिठाने का काम बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें मनोवैज्ञानिक सच्चाई यह है कि इंसानों की सारी अवधारणाएं उनके अपने अनुभवों के आधार पर बनती हैं। यदि आप गिलास की अवधारणा बना रहे हैं, तो जब तक आप गिलास देखेंगे नहीं या गिलास आपके अनुभव में नहीं आयेगा तो गिलास की अवधारणा बनाना बहुत मुश्किल होगा। अनुभव की जरूरत मूल अवधारणाओं के लिए होती है। एक से अधिक मूल अवधारणाओं को मिलाकर हम बहुत-सी जटिल अवधारणाएं बनाते हैं जिनमें सीधे अनुभव की जरूरत नहीं होती। यदि आपने कभी गिलास देखा ही नहीं है तो भी आपके पास कम से कम कुछ अनुभव ऐसे रहे होंगे कि कोई पात्र है जो कुछ डालने के काम आता है। मान लीजिए, आपने कटोरी देखी है। मैं यह कह सकता हूं कि अच्छा आपने कटोरी तो देखी है, अब यदि कटोरी को शीशे का बना दें और उसे इतना चौड़ा नहीं करके लम्बा कर दें और इसका चित्र बनाकर दिखा दें। लेकिन कहीं इसके मूल में आपका अनुभव रहेगा। दूसरी बात यह है कि आपके लिए गिलास की अवधारणा मैं नहीं बना सकता। मैं मदद कर सकता हूं। कोई दूसरा व्यक्ति मदद कर सकता हैं, अनुभव करवा सकता है, बातचीत कर सकता है, सवाल पूछ सकता है, संकेत दे सकता है; लेकिन अंततः तो आपका ही दिमाग काम करेगा। इसलिए एक संभावना यह है कि हमारे सबके मन में जितनी भी सामान्य अवधारणाएं हैं, चाहे वे इतनी सामान्य हों जैसे गाय या गिलास अथवा अमूर्त हों जैसे राज्य, प्रेम या भगवान। उनमें कुछ चीजें तो सामान्य होती हैं लेकिन उसमें कुछ चीजें हमारी नितांत व्यक्तिगत होती हैं। इसमें दोनों ही प्रकार की चीजें एक साथ होती हैं।

तो फिर ज्ञान क्या है? मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि अवधारणा ज्ञान का सबसे छोटा टुकड़ा है। जब हम अवधारणाओं को आपस में जोड़ते हैं तब वह ज्ञान बनता है। अकेले गिलास की अवधारणा बनने से ज्ञान नहीं बनेगा। जब आप यह कहेंगे कि शीशे के गिलास को पत्थर पर पटक दें तो टूट जाएगा तो अब आपने इसमें शीशा, गिलास, पत्थर, पटकना और टूटना; इन सबमें एक संबंध बनाया है। अब आप एक तरह से एक अनुभव की भविष्यवाणी कर रहे हैं। आप कह रहे हैं कि यदि मैं इसे पटकूंगा तो क्या होगा। यह एक भविष्यवाणी है। यहां बात सही या गलत की नहीं है, आपने भविष्यवाणी कर दी। इसका मतलब यह हुआ कि अवधारणाओं के बीच की संरचना, संबंधों की जो संरचना हम अपने दिमाग में बनाते हैं वह ज्ञान है। इन संरचनाओं को और अवधारणाओं को मैं ही बनाता हूं। मेरे लिए यह काम कोई दूसरा नहीं कर सकता। अब हमारी जो पहली दो शर्तें थीं उस पर पलटकर आइए। यदि ये शर्तें इस पर नहीं लगेंगी तो ज्ञान बहुत दूर तक नहीं जाएगा। मान लीजिए, मैं इस गिलास को छोडूं और यह ऊपर चला जाए तो आपका ज्ञान बहुत दूर नहीं जाएगा।

दूसरे, हममें से कोई आपकी बात नहीं समझता है और आप क्यों कह रहे हैं, इसके पक्ष में तर्क न दे सकें तो भी हम आपको ज्ञानी मानने को तैयार नहीं होंगे। अब यह दो शर्तें और चाहिएं। पहली बात मनोवैज्ञानिक है कि अवधारणाएं और उनमें संरचना बनाना व्यक्ति अपने अनुभव के आधार पर स्वयं ही कर सकता है, कोई दूसरा व्यक्ति उसके दिमाग में जाकर यह नहीं डाल सकता। इस दृष्टि से बच्चा अपना संपूर्ण ज्ञान स्वयं बनाता है। लेकिन बाद में यहां पर जो दो शर्तें आ गईं, उसमें दूसरों की भूमिका आ गई। एक तो बच्चे के अनुभवों को वह जिस दुनिया में रहता है, वह बार-बार उसके ज्ञान को तराशेगी। दूसरे, जब वह दूसरे लोगों से बातचीत करेगा तो उसे ऐसी भाषा में और आधारों पर बात करनी होगी कि दूसरे समझ सकें और स्वीकार करें। यह दूसरी बात है। यह इसका ज्ञानशास्त्रीय पक्ष है।

इसमें ज्ञानशास्त्रीय समस्या है। जब लोग एक ही बात करते हैं कि बच्चा संपूर्ण ज्ञान स्वयं ही बनाता है और ज्ञानशास्त्र को भूल जाते हैं, तो वह एक बहुत बड़ी गड़बड़ कर रहे होते हैं और यदि हम सब सिर्फ अपना-अपना ज्ञान लेकर ही घूमते रहेंगे तो वह एक टावर ऑफ बेवल बन जाएगा। अर्थात् हम कुछ बोलेंगे और कोई दूसरा कुछ नहीं समझेगा। दूसरी बात यह कि यदि आप सिर्फ और सिर्फ ज्ञानशास्त्रीय चीज ही ले लें कि वही चीज और वही शब्दावली जिसे सभी लोग एक तरह समझते हैं, उसी पर कायम हैं और बच्चे की अपनी भूमिका को भूल

जाएं तो उसमें सीखने की समस्या होगी। बच्चे के लिए स्वयं उसके आधार बता पाने, व्याख्या कर पाने और नए सृजन की क्षमता नहीं रहेगी। इसमें दो सिद्धान्त हैं जिनमें खिंचाव है और जिनको आपको मिलाना है।

इस दस्तावेज में इन दोनों चीजों को स्वीकार किया गया है कि किसी चीज को ज्ञान कहने के लिए कुछ ज्ञानशास्त्रीय आधार भी होते हैं और उसे प्रमाणित, सिद्ध भी करना होता है और उसके लिए प्रमाण भी देने होते हैं। दूसरी तरफ यह ज्ञान बच्चा स्वयं ही बनाता है। इसलिए इस दस्तावेज में ऐसी परिस्थितियों के निर्माण की बात की जा रही है जिसमें बच्चों को अवधारणाएं बनाने और स्वयं अवधारणाओं के ढांचे बनाने के खूब मौके मिलें। दूसरे स्तर पर उन अवधारणाओं को अनुभव के आधार पर जांचने के मौके मिलें ताकि वे परिष्कृत हो सकें। और तीसरे स्तर पर शिक्षक समेत बाकी लोगों से उसके बारे में चर्चा करना, साझा करना। उस पर दूसरे लोगों को प्रश्न उठाने के मौके हों और बच्चे सोचकर या तो अपनी बात दुरुस्त करें या उसका कोई प्रमाण ढूंढ़ें, इसके मौके हों। यह सारी बातें एक साथ की जा रही हैं और इस ढंग से की जा रही हैं कि आप बच्चे को प्रेरित करते हुए, स्वतंत्रता के साथ यह करवाएं, न कि किसी प्रकार के दबाव में किसी चीज को जबरदस्ती मानने की बात करें। यदि मोटे तौर पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के रचनात्मकतावाद को देखा जाए तो ज्ञान के बारे में यह दोनों स्वरूप वहां हैं। यह दस्तावेज इन्हें स्वीकार करता है। यदि मैं यह न कहूं कि इन दोनों धाराओं में थोड़ा तनाव है तो यह गलत होगा। ज्ञानमीमांसीय आग्रह और मनोवैज्ञानिक शिक्षणशास्त्रीय आग्रह की दोनों धाराओं में इस दस्तावेज में थोड़ा खिंचाव है। मेरा व्यक्तिगत मानना यह है कि यह दस्तावेज पिछले दोनों दस्तावेजों से बहुत आगे है। पहला दस्तावेज रचनात्मकतावाद की बात तो करता है, लेकिन वह उसकी ठीक से व्याख्या ही नहीं करता और ज्ञानमीमांसा को भी दरकिनार करता है। पहले दोनों दस्तावेजों में किसी प्रकार की ज्ञानमीमांसा है ही नहीं। वह मुखरित रूप से नहीं है, वे ज्ञानमीमांसा के बारे में मान्यताएं लेते हैं।

आजकल दुनिया में विषय को पढ़ाने के संदर्भ में लोग कम से कम तीन चीजें देखते हैं। पहला, उस विषय का तथ्यात्मक ज्ञान। यदि आप इतिहास या विज्ञान की बात करें तो उनमें एक पूरा शास्त्र है। उसमें बहुत सारी जानकारी, बहुत सारे तथ्य, उनके आपसी संबंध और उनके सिद्धान्त आते हैं। एक हिस्सा किसी विषय के तथ्यात्मक ज्ञान का हुआ और उसमें मैं सिद्धान्तों को भी ले रहा हूं जैसे कि पानी को आप ठण्डा करेंगे तो वह जम जाएगा। यह सामान्य सिद्धान्त हो गया। दूसरी चीज उस विषय में ज्ञान निर्माण के तरीके क्या हैं या इतिहास में ज्ञान निर्माण के तरीके क्या हैं, इसे लेते हैं।

आजकल यह माना जाता है कि उच्च प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को यह अनुभव देने की जरूरत है कि किसी भी विषय क्षेत्र में ज्ञान का निर्माण कैसे होता है और उस ज्ञान की जांच कैसे होती है। यदि कोई व्यक्ति विज्ञान या गणित का वक्तव्य दे तो उसे जांचने के क्या तरीके हैं। पहले के दोनों दस्तावेजों में विज्ञान के अलावा किसी भी विषय में इन दोनों ज्ञानमीमांसीय बातों का जिक्र नहीं है। यह दस्तावेज हरेक विषय के ज्ञान की प्रकृति और उसमें ज्ञान बनाने और जांचने के तरीकों पर भी बल देता है। यह दस्तावेज एक तरह से शिक्षणशास्त्रीय और ज्ञानमीमांसीय तनाव के बीच नेविगेट करने की कोशिश करता है। मुझे ऐसे लगता है कि हमें एक नए दस्तावेज की जरूरत है जिसमें इस समस्या को ज्यादा गहराई और सैद्धान्तिक दृष्टि से सुलझाया जा सके। इस दृष्टि से अभी इसमें समस्या है। ◆

आगामी अंक में जारी...